

प्रश्न- इतिहास को परिभाषित करते हुए साहित्येतिहास के स्वरूप को स्पष्ट करें?

अथवा

हिन्दी साहित्येतिहास दर्शन का वर्णन करें?

उत्तर- **इतिहास का अर्थ का स्वरूप इतिहास-** साहित्येतिहास के स्वरूप को भली प्रकार समझने से पूर्व हमें 'इतिहास' शब्द के अर्थ एवं स्वरूप को समझना चाहिए। 'इतिहास' शब्द इति+ह + आस से बना है तथा इसका अर्थ है- **"ऐसा हुआ था।** इससे यह स्पष्ट होता है कि अतीत काल की घटनाओं को संयोजित रूप में प्रस्तुत करना ही इतिहास है। यह मानवीय विकास की जीवंत प्रक्रिया है। एक सफल इतिहासकार अतीत के विस्तार में फैली हुई घटनाओं का यथासम्भव तथ्यपरक विवरण प्रस्तुत करता है। उसकी दृष्टि हमेशा तटस्थ एवं स्वच्छ होती है। वह तथ्यों को तोड़े-मरोड़े बिना प्रस्तुत करता है। वह अज्ञात तथ्यों की खोज करता है और तर्कसंगत कारण-कार्य मूलक विवेचन पद्धति द्वारा सही निष्कर्ष पाठकों के समक्ष रखता है। इस सन्दर्भ में डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा लिखते भी हैं- **"इतिहासकार एक अनुभवी और दृष्टि सम्पन्न व्यक्ति होता है। उसकी दृष्टि अतीत के अनुभवों से और वर्तमान के दबावों से उभरती है। जब इतिहासकार सांस्कृतिक, आर्थिक, साहित्यिक, सौन्दर्यात्मक या कोई अन्य दृष्टि प्रत्यक्ष रूप में अपनाकर नहीं चलता है, तब भी कोई-न-कोई दृष्टि उसके अध्ययन में गहराई से अनुस्यूत रहती है।"**

निश्चय से ऐतिहासिक तथ्य मानव-जीवन के लिए न केवल उपयोगी होते हैं, बल्कि वे मानव-समाज को प्रभावित भी करते हैं। अतीत के तथ्यों का सम्बन्ध व्यक्तियों तथा उनकी विचारधाराओं से होता है। इसलिए ऐतिहासिक तथ्य निर्जीव अथवा निरर्थक नहीं होते। प्रत्येक इतिहासकार के पास विश्लेषक दृष्टि होती है और इस दृष्टि के द्वारा वह तथ्यों को पहचानता है। उनको विभिन्न वर्गों में विभक्त करता है और आने वाली पीढ़ी के लिए अक्षर-निधि के रूप में संकलित करता है। इतिहासकार की दृष्टि का सहयोग पाकर ऐतिहासिक तथ्य जीवन्त परम्परा का अभिन्न अंग दिखाई देने लगते हैं। यही कारण है कि ऐतिहासिक तथ्यों के पीछे मानव-जीवन की राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक चिन्तन-धाराएँ निवास करती हैं। भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों ने अपनी-अपनी दृष्टि से इतिहास की परिभाषाएँ दी हैं।

- **कॉलिंगवुड** ने इतिहास की परिभाषा देते हुए लिखा है- **"इतिहास धर्मशास्त्र या भूत-विज्ञान की तरह एक चिन्तन पद्धति है। यह एक प्रकार का शोध है, खोज है, अन्वेषण है।"**

- **ईगल** के अनुसार- **"इतिहास केवल घटनाओं का अन्वेषण या संकलन-मात्र नहीं है, अपितु उसके भीतर कार्य-कारण का सम्बन्ध विद्यमान है।"**

- **महाभारत** में इतिहास के बारे में लिखा है-

"इतिहास प्रदीपेन मोहारणघातिना।

लोकगर्भगृहं कृत्स्नं यथावत् सं प्रकाशितम्।"

- **डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त** ने इतिहास की परिभाषा देते हुए लिखा है- **"अतीत के किसी भी तथ्य, तत्त्व या प्रवृत्ति का वर्णन, विवरण, विवेचन या विश्लेषण, जो काल विशेष या कालक्रम की दृष्टि से किया गया हो, इतिहास कहलाता है।"**

• डॉ. शिव कुमार शर्मा के अनुसार- "इतिहास देशकाल के आयाम में विकसित एवं विकासशील मानव की अन्वेषण के साथ-साथ सभी तथ्यों पर आधारित है, युग-सापेक्ष की व्याख्या है।"

2. इतिहास-दर्शन- इतिहास के बारे में विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न दृष्टिकोणों को सामने रखकर चिन्तन किया। समयानुसार विद्वानों के ये दृष्टिकोण बदलते रहे हैं। इसी स्थिति को सामने रखकर इतिहास-दर्शन विषय की चर्चा होने लगी। अतः **इतिहास दर्शन का अर्थ है-** "इतिहास के बारे में प्रयुक्त तथा उसकी प्रासंगिकता हाथ आ जाती है तो वह ऐतिहासिक तथ्य बन जाता है..... कई बार तथ्यों की सही व्याख्या नहीं हो पाती अर्थात् या तो उनसे अपेक्षित से कम अर्थ निकाला जाता है या उतना अर्थ निकाल लिया जाता है, जितना उनमें है ही नहीं। ये दोनों ही स्थितियाँ सही इतिहास के मार्ग में बायक हैं। अपने आदर्श रूप में इतिहास कालक्रम में नियोजित तथ्यों और उनसे सम्बद्ध विचारधाराओं और अनुभूतियों का सुसम्बद्ध दस्तावेज है।"

इसी प्रकार **डार्विन** ने विकासवादी सिद्धान्त की स्थापना करते हुए इतिहास को एक नूतन दृष्टि, शक्ति तथा गति प्रदान की। डार्विन के बाद कुछ अन्य विद्वानों ने सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में विकासवादी सिद्धान्तों की स्थापना से यह सिद्ध किया कि सृष्टि का कोई अंग अथवा तत्त्व एकाएक घटित अथवा रचित नहीं होता, बल्कि क्रम पूर्वक विकसित होता है। इस प्रकार वैज्ञानिकता के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 'इतिहास' का अभिप्राय 'घटना-समूह' का संकलन नहीं है, बल्कि 'विकासक्रम' का विवेचन है। इसी प्रकार एंजिल्स, कार्ल मार्क्स, हवसले, मारगन आदि विद्वानों ने अपने-अपने मत के अनुसार विकासवाद के विभिन्न पक्षों की व्याख्या की है। इसी प्रकार कुछ अन्य विद्वानों स्पेंगलर, टर्नर, द्वायनवी आदि बीसवीं शताब्दी के इतिहासकारों ने विश्व संस्कृति और सभ्यता के इतिहास की व्याख्या विकासवादी नियमों तथा प्रवृत्तियों की दृष्टि से प्रस्तुत की है।

इतिहास के बारे में भारतीय विद्वानों का दृष्टिकोण प्रायः **आदर्शवादी** रहा है। इस सन्दर्भ में डॉ. बुद्ध प्रकाश से लेकर डॉ. नगेन्द्र तक की श्रृंखला के विज्ञानों ने अपने-अपने दृष्टिकोण व्यक्त किए हैं। इस सन्दर्भ में हमें महाभारत के निम्नलिखित श्लोकार्थ का भी उल्लेख करना होगा जिसमें यह कहा गया है कि इतिहास हमारे मोह के आवरण को हटाता है और ज्ञान के चक्षुओं को खोलता है। डॉ. नगेन्द्र ने लिखा है- **"अस्तु, इतिहास-सम्बन्धी इन्हीं विचारों या धारणाओं को समूह रूप में इतिहास-दर्शन की संज्ञा दी जाती है।"** पाश्चात्य विद्वानों ने **इतिहास-दर्शन** को "Philosophy of History" कहा। वस्तुतः पाश्चात्य विद्वानों का दृष्टिकोण संकीर्ण और सीमित ही रहा। उदाहरण के रूप में, बोल्टेर ने इतिहास-दर्शन का अर्थ करते हुए उसे केवल आलोचनात्मक अथवा वैज्ञानिक इतिहास तक ही सीमित रखा। लेकिन हीगल ने इसका प्रयोग विश्व-इतिहास के सन्दर्भ में किया।

3. साहित्येतिहास का दर्शन- पहले बताया जा चुका है कि इतिहासदर्शन शब्द का सबसे पहले प्रयोग पाश्चात्य चिन्तक **'बोल्टेर'** ने ही किया था। लेकिन आज इतिहास-दर्शन का प्रयोग व्यापक अर्थों में होने लगा है। प्रायः इतिहास में हम राजनीतिक तथा सांस्कृतिक घटनाओं की चर्चा करते हैं। परन्तु साहित्येतिहास में निहित इन तत्त्वों - को हम मानव-जीवन से जोड़कर देखते हैं। **साहित्येतिहास का अर्थ है-** साहित्य का इतिहास, जो कि युग-बोध की तत्कालीन परिस्थितियों से सम्बद्ध होकर भी भविष्य की ओर संकेत करता है। यही कारण है कि पाश्चात्य **निबन्धकार बेकन** ने स्वीकार किया है कि साहित्येतिहास

मानव-संस्कृति के विकास का अविभाज्य अंग है। वही साहित्येतिहास सफल कहा जा सकता है, जिसे साहित्य की विधाओं के साथ-साथ अतीत के धर्म, दर्शन, राजनीति, समाज आदि का भी अच्छा ज्ञान हो। अपने ग्रन्थ 'साहित्य के इतिहास' में आचार्य शुक्ल लिखते भी हैं- "जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चितवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है, जब यह निश्चित है कि जनता की चितवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता जाता है। आदि से अन्त तक इन्हीं चितवृत्तियों की परम्परा को परखते हुए साहित्य-परम्परा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही 'साहित्य का इतिहास' कहलाता है। जनता की चितवृत्ति बहुत कुछ राजनीतिक, सामाजिक, साम्प्रदायिक और धार्मिक परिस्थिति के अनुसार होती है।" इस सन्दर्भ में डॉ. नगेन्द्र ने भी कहा है कि हम साहित्यिक रचनाओं का अध्ययन मानवीया क्रिया-कलापों के आधार पर न करते हुए ऐतिहासिक दृष्टि से करते हैं। साहित्यिक रचनाओं से हम साहित्यकार की सर्जनात्मक क्रियाओं तथा प्रवृत्तियों को जान पाते हैं। अतः यदि हम साहित्यिक रचनाओं के इतिहास को समझना चाहते हैं तो उनके रचयिताओं से संबंधित परिस्थितियों को जानना अत्यन्त आवश्यक है। कबीरदास जी के साहित्य को समझने के लिए उनके जीवन तथा तत्समकालीन परिस्थितियों और परम्पराओं को जानना आवश्यक है। कबीर जी ने अपने जीवन की परिस्थितियों से प्रभावित होकर ही अपनी श्रेष्ठ अमूल्य रचनाओं से हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया। इसी प्रकार सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' और सुमित्रानंदन पंत जी की रचनाएँ भी तत्कालीन युगीन परिस्थितियों से प्रभावित हैं। इसी प्रवृत्ति के कारण साहित्येतिहास और इतिहास भिन्न प्रतीत होते हैं।

तेन ने भी लिखा है- "किसी भी साहित्य के इतिहास को समझने के लिए उससे संबंधित जातीय परम्पराओं, राष्ट्रीय और सामाजिक वातावरण एवं सामाजिक परिस्थितियों का अध्ययन-विश्लेषण आवश्यक है।"

साहित्येतिहास के दर्शन की चर्चा करते समय हमें इस बात का ध्यान रखना होगा कि किसी भी जाति के साहित्य का इतिहास उस जाति के सामाजिक एवं राजनैतिक परिवेश का प्रतिफलन होता है। इस सन्दर्भ में फ्रांसीसी विद्वान तेन (तैने) ने प्रतिपादित किया है कि "किसी भी भाषा के साहित्य के इतिहास को समझने के लिए तत्सम्बन्धित जातीय परम्पराओं, राजनैतिक-सामाजिक वातावरण तथा सामाजिक परिस्थितियों का अध्ययन अनिवार्य है।" इसके साथ-साथ हडसन ने लेखक के व्यक्तित्व और उसकी प्रतिभा को समझने पर भी बल दिया है। इसी प्रकार मार्क्सवादी आलोचकों ने द्वन्द्ववात्मक भौतिकवाद तथा वर्ग-संघर्ष के सन्दर्भ में साहित्य के विश्लेषण पर बल दिया है। मनोविश्लेषकों का कहना है कि मनोविज्ञान की दृष्टि से साहित्य का मूल्यांकन किया जाना चाहिए। डॉ. नगेन्द्र ने इन सभी सिद्धान्तों का समुचित विवेचन करने के उपरान्त साहित्य के इतिहास के समग्र रूप में अध्ययन करने के लिए निम्नलिखित पाँच तत्त्वों की जानकारी आवश्यक मानी है। इन्हीं तत्त्वों को आधार बनाकर किसी भी भाषा के साहित्येतिहास का समुचित मूल्यांकन हो सकता है।

(क) साहित्यकार की प्रतिभा और उसका व्यक्तित्व

(ख) साहित्यिक तथा सांस्कृतिक परम्पराएँ

(ग) राजनैतिक तथा सामाजिक वातावरण

(घ) द्वन्द्व (आर्थिक परिस्थितिजन्य)

(ड) सन्तुलन

(क) साहित्यकार की प्रतिभा और उसका व्यक्तित्व- साहित्य एक साहित्यकार द्वारा ही रखा जाता है। साहित्येतिहास का मूल साहित्य का अध्ययन है। साहित्येतिहास लिखने वाले साहित्यकार में प्रतिभा का होना नितान्त आवश्यक है। उसमें यह विवेक होना चाहिए कि वह सामयिक, सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों को भली प्रकार से जाने। अक्सर देखने में आया है कि एक ही काल में दो कवियों की रचनाओं में पर्याप्त अन्तर होता है। यदि साहित्यकार में प्रतिभा होगी तो वह उस अन्तर तथा उसके कारणों को भली प्रकार से जान पाएगा। ऐसा होने पर ही लेखक साहित्यकार की प्रतिभा और उसकी सृजन क्षमता को जान सकेगा। इसलिए हमें स्वीकार करना होगा कि साहित्येतिहास में साहित्यकार की प्रतिभा तथा उसके व्यक्तित्व की विशेष भूमिका रहती है, जिसे समझे बिना साहित्येतिहास प्रामाणिक नहीं हो सकता।

(ख) साहित्यिक तथा सांस्कृतिक परम्पराएँ- किसी भी भाषा के साहित्येतिहास को लिखने से पहले काल-विशेष की साहित्यिक और सांस्कृतिक परम्पराओं को जान लेना नितान्त आवश्यक है। साहित्य इन्हीं परम्पराओं से सम्बद्ध होता है। साहित्येतिहास लेखक को साहित्य के मूल स्रोत को खोजने के लिए तत्कालीन परिवेश के साथ-साथ पूर्ववर्ती परम्पराओं से भी अवगत होना पड़ता है। उदाहरण के रूप में, यदि हम हिन्दी साहित्य के भक्तिकालीन निर्गुण काव्यधारा के उद्गम को खोजना चाहते हैं तो हमें न केवल **शंकराचार्य के अद्वैत सिद्धान्त** तक के विकासक्रम को जानना होगा, बल्कि आदिकालीन सिद्ध साहित्य, नाथ साहित्य और जैन साहित्य के दार्शनिक सिद्धान्तों को भी समझना होगा। यदि साहित्येतिहास लेखक पूर्ववर्ती परम्पराओं से परिचित होता है तो वह साहित्येतिहास लेखन में भी सफल रहता है।

(ग) राजनैतिक तथा सामाजिक वातावरण-साहित्येतिहास दर्शन में राजनैतिक और सामाजिक परिवेश की पहचान होना भी आवश्यक है। जिस किसी सामाजिक अथवा राजनैतिक परिवेश में कोई कृति रचित होती है, तो साहित्येतिहास में उसका विवरण देना भी जरूरी है। इसका प्रमुख कारण यही है कि हम सभी इस बात से भली-भाँति विदित हैं कि साहित्य समाज का ही दर्पण होता है। काल-विशेष की साहित्यिक रचनाओं पर तत्कालीन सामाजिक और राजनैतिक परिस्थितियों का प्रभाव अवश्य पड़ता है। उदाहरण के रूप में, भक्तिकालीन साहित्य में राष्ट्र-भावना न के बराबर है। इसका प्रमुख कारण यही है कि उस समय हिन्दू लोग पूर्णतया पराजित हो चुके थे और मुस्लिम राज्य की स्थापना हो चुकी थी। यही कारण है कि तत्कालीन कबीर, सूर, तुलसी आदि सभी कवि भक्ति की शरण में आत्मसुख खोज रहे थे। इसी प्रकार से आदिकालीन साहित्य में भी राष्ट्र-भावना देखने को नहीं मिलती। तत्कालीन कवि और साहित्यकार दरबारी परिवेश के अनुसार साहित्य की रचना कर रहे थे।

(घ) द्वन्द्व (आर्थिक परिस्थितिजन्य)- पाश्चात्य चिन्तक हीगल का विचार है कि दो परिस्थितियों अथवा घटनाओं के परस्पर टकराने से जो तीसरी परिस्थिति अथवा घटना उत्पन्न होती है, वह पहली परिस्थितियों की अपेक्षा अच्छी होती है। मानव-विकास का मूल आधार ही द्वन्द्व है। साहित्येतिहास में भी इस द्वन्द्व का विशेष स्थान रहता है। साहित्यकार अथवा लेखक आन्तरिक अथवा बाह्य द्वन्द्व से ग्रस्त होकर रचना लिखता है। इसे हम आर्थिक परिस्थितिजन्य द्वन्द्व भी कह सकते हैं। उदाहरण के रूप

में, कबीर के काव्य में बाह्य द्वन्द्व के कारण ही सामाजिक विसंगतियों के प्रति आक्रोश व्यक्त किया गया है। दूसरा, कबीर आदि सभी निर्गुण संत कवि आर्थिक परिस्थितिजन्य द्वन्द्व से भी ग्रस्त रहे हैं।

(ड) सन्तुलन- साहित्यकार अपनी सृजन-शक्ति के आधार पर विषम परिस्थितियों तथा विसंगतियों का सामना करता हुआ जीवन-मूल्यों को खोजता है। वह अनुकूल तथा प्रतिकूल के मध्य सन्तुलन स्थापित करने का प्रयास करता है। कर्तव्य-अकर्तव्य, मानवीय-अमानवीय, धर्म-अधर्म, न्याय-अन्याय आदि के बीच सन्तुलन स्थापित करके वह समाज को गति प्रदान करता है। साहित्येतिहास दर्शन में इस सन्तुलन का विशेष महत्व है, क्योंकि सन्तुलन के द्वारा ही वह अपनी सृजनात्मक वृत्तियों का उद्घाटन करता है।